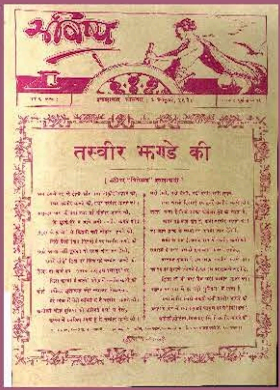

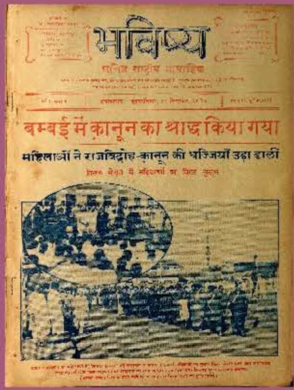

लमही

अप्रैल-जून 2024

ISSN 2278-554- X Lamahi
UGC Care Listed

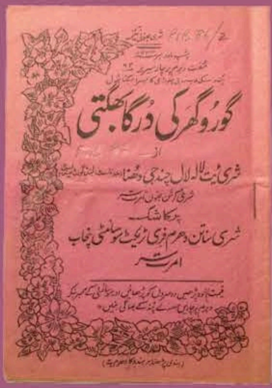

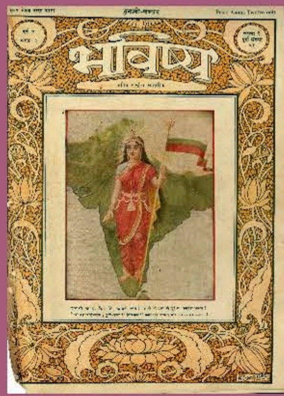

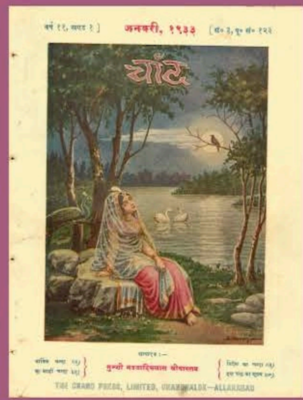

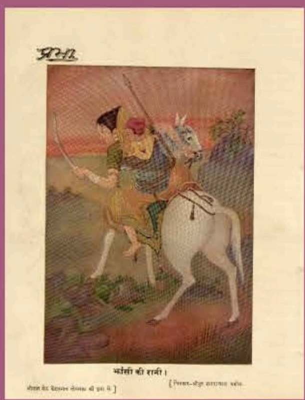

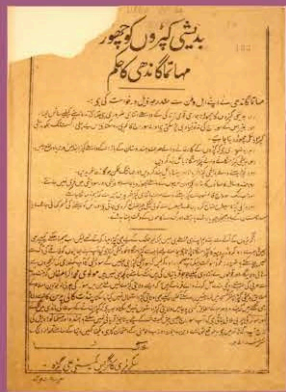

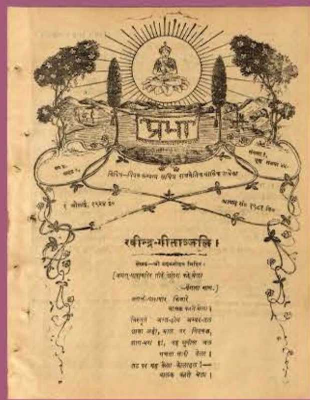

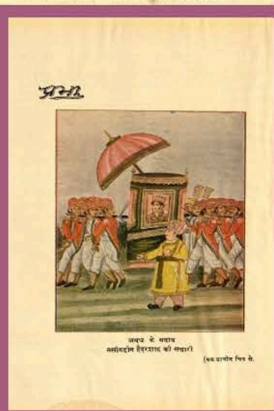

प्रतिबंध और प्रतिरोध/1850-1947

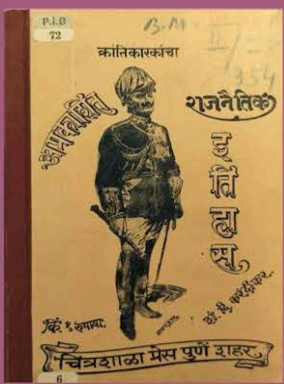

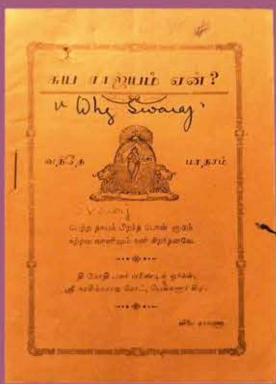

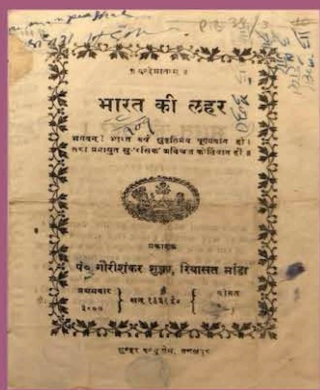

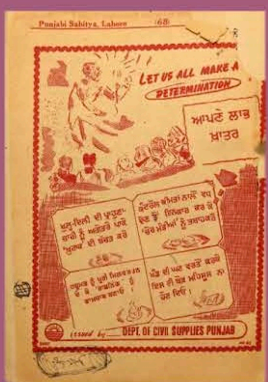

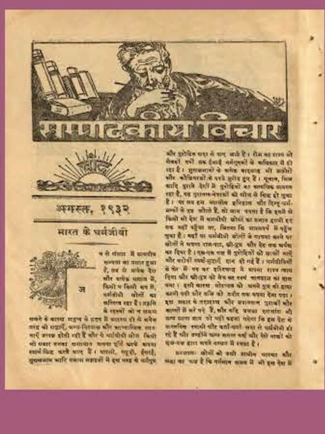

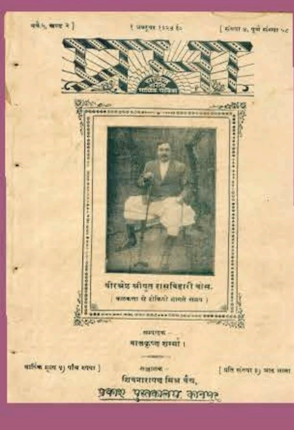

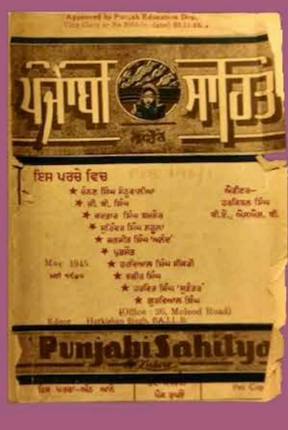

मूल्य : 150/- रुपये मात्र

प्रधान संपादक*
विजय राय

संपादक*
ऋत्विक राय

संयुक्त संपादक*
ऋतिका
वत्सल कक्कड़

इस अंक के अतिथि संपादक*
गजेंद्र पाठक
रविकान्त

सह-संपादक*
आशुतोष कुमार पाण्डेय

संपादन सहयोग*
मृत्युंजय
पंकज यादव
कुमुद रंजन
विकास शुक्ल
मोहम्मद नौशाद

आवरण और साज-सज्जा
मृत्युंजय चटर्जी

टंकण
चंदन शर्मा

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय संपर्क
3.343, विवेक खंड, गोमती नगर
लखनऊ-226016 उत्तर प्रदेश
ईमेल: vijairai.lamahi@gmail.com
मो॰ 9454501011

इस अंक का मूल्य : 150/- रुपये मात्र

लमही का वेब अंक आप
www.notnul.com पर पढ़ सकते हैं।

प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे त्रैमासिक पत्रिका 'लमही' और उसके संपादक मण्डल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र लखनऊ होगा। लमही की स्वत्वाधिकारी, मुद्रक एवं प्रकाशक मंजरी राय के लिए श्रीमंत शिवम् आर्ट्स, 211 पाँचवीं गली, निशातगंज, लखनऊ से मुद्रित तथा 3/343, विवेक खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ-226010 से प्रकाशित।

*सभी अवैतनिक

वर्ष: 16, अंक: 4, अप्रैल-जून 2024
UGC Care Listed

प्रतिबंध और प्रतिरोध
1850-1947

प्रतिष्ठित संस्थान
INSTITUTION OF EMINENCE

celebrating 60 years
1963-2023

सूची

खंड-1: है क़लम बँधी स्वच्छंद नहीं

उपनिवेशवाद और प्रतिबंधन 15

रविभूषण

स्वाधीनता संघर्ष में प्रतिबंधित क्रांतिचेता साहित्य की मार्मिक कथा 24

विजय राय

औपनिवेशिकता, प्रतिबंधन और पग-पग प्रतिवाद 33

संतोष भदौरिया

उपनिवेशवाद के सन्दर्भ में प्रतिबंधित प्रकाशन 75

निशांत कुमार

प्रतिबंधित साहित्य का देश-काल और 'कैनन' 83

मृत्युंजय

सत्ता का प्रतिरोधी स्वर: प्रतिबंधित साहित्य 98

अखिल मिश्र

प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्त लोकतांत्रिक मूल्य 107

प्राची चौधरी

खंड- 2: लोक और प्रतिरोध

प्रतिबंधित भोजपुरी लोक साहित्य 119

विद्या सिन्हा

प्रतिबंधित साहित्य में लोक गीतों की झंकार 134

राजमणि

राष्ट्रीय आंदोलन और भोजपुरी का प्रतिबंधित साहित्य 173

शुभनीत कौशिक

लोकगीतों में प्रतिबन्ध और लोकवृत्त का दिलचस्प आख्यान 188

उज्ज्वल कुमार सिंह

सागरमल गोपा और रघुनाथ सिंह का मुकदमा 207

रामप्यारी

राजपूताना में प्रेस, भाषा, शिक्षा का प्रसार और प्रतिबंधन की राजनीति 230

भीम सिंह

खंड -3: हिन्दी जनपद से आगे

प्रतिबंध का प्रपंच 244

शशि मुदीराज

तेलुगु का प्रतिबंधित उपन्यास : मालपल्ली 262

अन्नपूर्णा. सी

अरिमर्दन हेतु मातृ आह्वान 270

निरंजन सहाय

उर्दू की प्रतिबंधित शायरी : एक अध्ययन 285

मो. जाहिदुल हक

सआदत हसन मंटो : प्रतिबंधों से परे 298

प्रियदर्शिनी

पंजाबी का प्रतिबंधित साहित्य 308

मंजना कुमारी

'हैदराबाद' : मख़दूम मोहिउद्दीन की प्रतिबंधित पुस्तक 322

जे. आत्माराम

खंड-4: हिन्दी कविता का प्रतिरोधी स्वर

'स्व' का जागरण और ब्रिटिशकालीन प्रतिबंधित गीत 332

प्रदीप त्रिपाठी

प्रतिबंधित साहित्य में राष्ट्रीय चेतना 343

राजवन्ती

खंड-5: जीवन संग्राम की भाषा

प्रेमचंद का 'सोज़े वतन' 356

प्रदीप जैन

स्वाधीनता आंदोलन और प्रतिबंधित गद्य साहित्य 363

रुस्तम राय

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की प्रतिबंधित कहानियाँ 372

संजीव कुमार दुबे

उपनिवेश काल में प्रतिबन्ध और प्रवासी साहित्य 383

अमित कुमार मिश्र

औपनिवेशिक भारत में साहित्यिक प्रतिबंध की संस्कृति और 'देश की बात' 395

कौसर साबिदा सुलताना

आज़ादी के संघर्ष का दहकता दस्तावेज़ : 'आगरा सत्याग्रह संग्राम' 404

मधुलिका बेन पटेल

खंड-6: मदर इंडिया

'मदर इंडिया' और बीसवीं सदी के बुद्धिजीवी 426

सुमन कुमारी

औपनिवेशिक इतिहास लेखन और मिस कैथरीन मेयो की 'मदर इंडिया' 442

अजीत आर्या

खंड-7: हिन्दी पत्रकारिता

'चाँद' का फाँसी अंक : ज़ब्ती का ब्यौरा 464

आशुतोष पार्थेश्वर

चाँद के ‘फाँसी’ अंक में प्रतिबिंबित स्वाधीनता आंदोलन की छवियाँ 504

एकता वर्मा

रामरख सिंह सहगल 522

गौरव सिंह

खंड- 8: मंच और प्रतिबंध

प्रतिबंधित मराठी नाटक (1875 से 1910 तक) 540

प्रकाश कोपार्डे

ड्रामेटिक परफ़ोर्मेंस एक्ट, पारसी रंगमंच और स्वतन्त्रता आंदोलन 565

सत्यभामा

खंड-9: धरोहर 588

लोकगीतों में प्रतिबन्ध और लोकवृत्त का दिलचस्प आख्यान

उज्ज्वल कुमार सिंह

जब - जब सत्ता को साहित्य से ख़तरा महसूस हुआ है तब-तब साहित्य की लोकप्रियता ने उसे आतंकित किया है। फिर उसने उसे जब्त या प्रतिबंधित करने का कार्य किया है। आज़ादी के पहले और आज़ादी के बाद भी यह परिपाटी देखने को मिलती है। इसे मानवीय स्वभाव या मनोविज्ञान कहें कि जब - जब किसी साहित्य, वस्तु या क्रिया को पढ़ने या इस्तेमाल करने से रोका जाता है तब – तब उसकी प्रासंगिकता और बढ़ जाती है। लोग उसे अधिक उत्सुकतावश देखने, पढ़ने या उसके अनुरूप कार्य करने का प्रयास करते हैं। यह सत्य है कि सत्ता हमेशा ही जन-आंदोलनों से भयाक्रांत होती है। तानाशाह और हत्यारे दोनों को हमेशा यह डर होता है कि कोई विद्रोह न कर दे, इसलिए प्रायः कोई भी सत्ता जनता को कानून अथवा कोई भय दिखाकर अपने वश में रखना चाहती है। क्योंकि कोई भी सत्ता लिप्सा, पूर्ण न्याय की प्रतिष्ठा नहीं कर सकती है। उसे अपने शोषणपूर्ण कार्य करने की पद्धति में कई बार सामाजिक स्वाधीनता के सिलसिले में निषेध को शामिल करना पड़ता है। इन प्रतिबंधों से समाज में असंतोष की भावना भरने लगती है और अपनी भावनाओं को प्रकट करने के लिए साहित्य से बेहतर रास्ता और भला क्या हो सकता है! यही कारण है कि आदिकाल से आधुनिक काल तक रचनाकारों का एक धड़ा ऐसा भी रहा है, जो जन-आकांक्षाओं को अपनी रचना के केन्द्र में रखा। इसी सन्दर्भ में मैनेजर पाण्डेय लिखते है “इतिहास जिनकी उपेक्षा करता है, साहित्य उनकी चिंता करता है और उनकी आवाज बनकर उन्हें नया जीवन देता है।”[i] यहीं कारण है कि जन-आकांक्षाओं को केंद्र में रखकर लिखी गई रचनाओं में प्रतिरोध का स्वर देखते हुए लगातार इन्हें प्रतिबंधित या जब्त किया जाता रहा है। भारत में आजादी की पृष्ठभूमि में निकलने वाली पत्र-पत्रिकाओं/

पुस्तकों को ज़ब्त किया गया, उसे प्रतिबंधित किया गया। संपादकों/लेखकों को गिरफ्तार किया गया, रिपोर्टों/पांडुलिपियों को ज़ब्त किया गया, प्रेस पर छापे पड़े, प्रेस के मालिकों/लेखकों/संपादकों को जेल जाना पड़ा, उनपर आर्थिक दंड लगाए गए, कई कई बार प्रेस को भी प्रतिबंधित किया गया।

प्रतिबंध को लागू करते वक्त सत्ता हमेशा उचित करवाई, कानून व्यवस्था और सुशासन को अपना हथियार बनाती है, जबकि उसके पीछे की मंशा उसे अध्ययन और लोकप्रियता से रोकना ही होता है। प्रशासन संगठन, सभा, प्रेस, लेख आदि को गैरकानूनी घोषित कर दंडात्मक रुख अख्तियार करता है। कई बार बोलने पर, भाषण देने पर, जुलूस निकालने पर, सभा करने पर रोक लगा दी जाती है। साहित्यकार का कर्तव्य है कि आततायी व्यवस्था के विरुद्ध जनता को जागरूक करे और अपने हक़ की लड़ाई के लिए प्रेरित करे। प्रेमचंद के शब्दों में कहें तो “साहित्यकार का लक्ष्य केवल महफ़िल सजाना और मनोरंजन का सामान जुटाना नहीं है – उसका दरजा इतना न गिराइए। वह देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई नहीं, बल्कि राजनीति के आगे मशाल दिखाते हुए चलने वाली सच्चाई है।”[ii] इस कथन को साम्राज्यवादी शक्तियों के संदर्भ में आराम से समझ सकते हैं। साम्राज्यवादी शक्तियाँ अपने वर्चस्व कायम रखने के लिए उन सभी प्रयासों का दमन करना चाहती है जो लोगों में, उपनिवेशों में स्वतंत्र होने की और मुक्त होने की चेतना विकसित करती है। साहित्य में जब-जब जनता को जागृत करने की चेतना जहाँ-जहाँ दिखाई दी उस साहित्य को साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा प्रतिबंधित कर दिया गया। बोलने की आज़ादी और प्रतिबन्ध का अन्योनाश्रय सबंध रहा।

अगर हम स्वतंत्रता पूर्व के औपनिवेशिक भारत की बात करें तो हम यह देखते हैं कि तत्कालीन ब्रिटिश हुकूमत द्वारा उन सभी कृतियों पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाता था, जिसका

सम्बन्ध 1857 की क्रांति, इसाई धर्म के प्रचार – प्रसार, सत्ता तंत्र से असहमति दिखलाई पड़ता था। कई बार कृषि से भी सम्बन्धित पदों को भी इस प्रतिबंध का शिकार होना पड़ा।

लगान आधा करो जमीं का, किसान जिससे जरा सुखी हों।
महकमा इसका हमारी कौंसिल के ताबे तुमको रखना होगा।।[iii]

ब्रिटिश राज में दुनिया के किसी भी देश के स्वाधीनता आंदोलन के समर्थन में लिखा हुआ लेख पूरी तरह से प्रतिबंधित था। यहाँ तक कि रूसी क्रांति और मार्क्सवाद के बारे में भी कुछ जानकारी देने वाली रचनाएँ पूरी तरह से प्रतिबंधित थी।

साहित्य के इतिहास पर लिखते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने ‘हिन्दी साहित्य का इतिहास’ में लिखा है कि “जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता के चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिम्ब होता है तब यह निश्चित है कि जनता के चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरुप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।”[iv] गुलामी की छटपटाहट और शोषण के विरुद्ध जनता के बीच अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ़ पर्याप्त रोष व्याप्त था। तत्कालीन साहित्यकारों ने तथा आम जनता ने पत्र/पत्रिकाओं में उसको अभिव्यक्ति दी। इसका परिणाम यह हुआ कि कई बार उनकी रचनाओं को जब्त कर लिया जाता था और तरह – तरह की प्रताड़ना का शिकार होना पड़ता था। जिससे लोक में और भी असंतोष बढ़ता गया। उन्हीं बढ़ते असंतोष ने जनता में एक विद्रोही स्वर को जन्म दिया जिसे हम तत्कालीन समाज के लोकवृत्त के रूप में देख सकते हैं। लोकवृत्त का अर्थ, लोक के चित्त में उठने वाले सभी विचारों से सम्बंधित है। अंग्रेजी में इसे ‘पब्लिक स्फेयर’ कहा जाता है।

तत्कालीन लोक को देखें तो देश के लिए मर - मिटने को तैयार जनता गांधी को अपना नेता मानती है और उनके एक इशारे को पाकर देश के झंडे के लिए जान कुर्बान करने तक में तनिक झिझक नहीं थी।

न घबड़ावो करो कुछ सब्र देखो गौर करके तुम।

तुम्हारे वास्ते गांधी लिए परवाना आता है।।

नहीं वह जेल है अब तो तपो भूमि है ऋषियों की।

जहाँ पर बंद होने देश का दीवाना आता है।।[v]

यहाँ यह बताना आवश्यक होगा कि इस कविता को बरतानी हुकुमत ने 10 दिसंबर 1930 को प्रतिबंधित किया था। जिसका उल्लेख राष्ट्रीय अभिलेखागार स्थित इम्पीरियल रिकॉर्ड डिपार्टमेंट के ACC No. 581 H में देखने को मिलता है।

गांधी के अलावा भी भारत के कई नेताओं के लिए भी जबरदस्त दीवानगी उस दौर में देखने को मिलती है। एक बड़ा वर्ग गांधी से इतर जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्त्व क्षमता पर भी विश्वास करता था और उनका, मानना था कि आज़ादी के लिए ही नेहरू ने सभी सुख – सुविधाओं को तिलांजलि देकर संघर्ष का मार्ग चुना है। सनद के लिए राष्ट्रीय अभिलेखागार के इम्पीरियल रिकॉर्ड डिपार्टमेंट के ACC No. 219 में दर्ज़ अभिलेख देख सकते हैं-

बूढ़े भी ज़रा देखें तदबीर जवाहर की।

चमकी है जवानी में तक़दीर जवाहर की।।

बेचैन हए क्या – क्या बेदर्द भी सुन – सुन कर।

किस दर्द में डूबी है तक़दीर जवाहर की।।[vi]

इतना ही नहीं उस परवानगी के दौर में गांधी को मानने वालों के प्रति भी जबरदस्त उत्साह देखने को मिलता है। उन लोगों को यह भरोसा हो चला था कि आज़ादी की सुबह, इनके बताए मार्गों पर चलकर ही देखने को मिल सकती है। ज़ुल्म – ओ – सितम का सूरज तभी अस्त होगा जब हम पथ से नहीं डिगेंगे। ऊपर वर्णित अभिलेख के ग़ज़ल संख्या 3 को देखें -

वो लाख सितम करलें शायक़ पर पथ से न हम विचलित होंगे।

सर अपना आज झुकाया है, इन गांधी टोपी वालों ने।।[vii]

×××---------------------×××

अर्जुन और द्रोण युधिष्ठिर के वंशजवाले जो सोते थे।

निंद्रा से उन्हें जगाया है इन गांधी टोपी वालों ने।।[viii]

भारतीय लोक न केवल गांधी, नेहरु, भगत सिंह, चंद्रशेखर आज़ाद, राजेंद्र प्रसाद, लाला लाजपत राय आदि में अपना नेता देखता था बल्कि हर क्षेत्र में लोक का अपना नेता भी था। मसलन बिहार के भोजपुरी भाषी क्षेत्र का लोक बाबू वीर कुँवर सिंह, बाबू अमर सिंह को अपना नेता मानता था तो वहीं अवध का लोक गुलाब सिंह, श्रीपति महराज आदि को।

(1)

राजा लोग रजुली, बाबू लोग धुनिया

मरद बाबू अमर सिंह, कांपत बा दुनिया[ix]

(2)

बाबू कुँवर सिंह तोहरे राज बिनु

अब न रंगइबौ केसरिया[x]

(3)

बाबू कुँवर सिंह पश्चिम से जब पांयत कईले,

पयना में डेरा गिरवले ना।

लोहा के जामा सिअवले कुँवर सिंह,

तम्मन बन्द लगवले ना।।[xi]

ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन भारत में राजनीतिक मुद्रित साहित्य के प्रसार से इतना भयाक्रांत था कि उसे सामान्य सी रचना जिससे थोड़ा भी देशप्रेम या भाषायी तेवर देखने को

मिलते उसे तुरंत जब्त करके, उसे रोकने के प्रयास में जुट जाते। उन्होंने ऐसी कई सारी नीतियों का निर्माण किया ताकि उनके विरोध में उठने वाली सभी स्वरों को दबाया कुचला जा सके। 1878 में पारित वर्नाकुलर प्रेस एक्ट इसका ही एक उदाहरण है। भारतीय नेताओं, विचारकों, चिंतकों एवं लेखकों ने इसका भरपूर विरोध किया जिसका परिणाम यह हुआ कि इस एक्ट को 1882 में हटाना पड़ा। लेकिन इसके बाद भी पत्र- पत्रिकाओं, किताबों, लेखों, कविता, कहानी, निबंध आदि को प्रतिबंधित किये जाने का सिलसिला अनवरत जारी रहा। उदाहरण के तौर पर प्रयाग से ही प्रकाशित मासिक पत्रिका 'हिन्दी प्रदीप' की बात करें तो उसपर दो बार प्रतिबंध लगाये गये और एक बार हर्जाना न चुकाने के करण पत्रिका को बंद करना पड़ा। प्रतिबन्ध का कारण स्पष्ट था कि 'हिन्दी प्रदीप' में बातें खरी - खरी छपती थी। बालकृष्ण भट्ट ने पत्रिका बंद करना मुनासिब समझा लेकिन उन्होंने कभी भी सीधी बात करने और जनता की आवाज को जगह देने से कभी समझौता नहीं किया। 1909 में अप्रैल के अंक में माधव शुक्ल की कविता 'बम क्या है' प्रकाशित होती है और इसके बाद पत्रिका पर 3000 रूपये का जुर्माना लगा दिया जाता है। बालकृष्ण भट्ट इतने रुपये लाते कहाँ से? लिहाजा उन्होंने पत्रिका बंद करने का निर्णय लिया। वे चाहते तो बिना शर्त माफ़ी माँगकर पत्रिका से ऐसी बात आगे न छापने की बात करके जुर्माने से बच सकते थे, लेकिन उन्होंने जनता की बातों को प्रमुखता दी और पत्रिका बंद कर दी। 1877 में अपने प्रकाशन शुरू होने के कुछ ही समय बाद 1878 में आये वर्नाकुलर प्रेस एक्ट के खिलाफ़ 'हम चुप न रहें' शीर्षक से लेख प्रकाशित होता है, जिसमें लेखकों से इसके विरोध में लिखने का आह्वान किया गया। इसके बाद देश भर में विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में इसके खिलाफ़ लेख छपे।

दैनिक समाचार पत्रों में 'वर्तमान' का नाम उस समय की प्रमुख पत्रिकाओं में होता था। 1920 से प्रकाशित इस समाचार पत्र को कई बार सरकारी दमन का शिकार होना पड़ा। 6

फ़रवरी 1934 को जवाहरलाल नेहरू का एक लेख ‘राजनीतिक भूकंप’ नाम से छपा, जिसमें बंगाल में बरतानी हुकूमत द्वारा चलाई जा रही दमनकारी नीतियों पर जमकर प्रहार किया गया था, यह अंक सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया।

मई 1931 में ‘अभ्युदय’ ने भगत सिंह पर अपना एक विशेष अंक निकाला। यह अंक इस लिए भी विशेष हो जाता है कि इसमें भगत सिंह पर पं. जवाहरलाल नेहरू, महात्मा गांधी, सरदार पटेल आदि ने लिखे।[xii] यहाँ यह बताने का उद्देश्य यह नहीं है कि तत्कालीन पत्रकारिता पर कितने प्रतिबन्ध लगाये गये और किस करण से लगाये गये अपितु यहाँ उद्देश्य यह बताना है कि उस वक्त देश का लोकवृत्त क्या था। हिन्दी के अलावा भी कई भाषाओं में जनता की आवाज को बल मिला। साथ ही साथ किसी भी भाषा की रचना हो अगर उसमें कुछ भी ऐसा होता जो स्वतंत्रता आन्दोलन से प्रेरित लगता या क्रांति का आह्वान करता, उसे बरतानी हुकूमत तुरंत जब्त कर लेती थी।

स्वतंत्रता की आग सीने में कैसे धधक रही थी, इसकी बानगी उस समय के लोकगीतों में भी देखने को मिलती है। लोगों के मन में परतंत्रता से निकलने की छटपटाहट कितनी थी उसे निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है, जो राष्ट्रीय अभिलेखागार के इम्पीरियल रिकॉर्ड डिपार्टमेंट के ACC No. 313 H में दर्ज है। इसे 30 मई 1931 को प्रतिबंधित किया गया था –

अरे फिरंगिया यही है तेरा धर्मराज

भारत को गारत कर दिया ।।

लाखों ही बच्चे मारे नौ जवां ।

अरे फिरंगिया हुई निपूती लाखों रांड।।[xiii]

इन पंक्तियों से देखते है कि किस तरह से उस समय का लोक आने वीर जवानों के शहीद होने पर दुःख मनाता है और सवाल करता है। इसी तरह वो आगे कहता है, कि गुलामी से तो अच्छा

है कि देश के लिए अपने प्राण त्याग दिए जाए। इम्पीरियल रिकॉर्ड डिपार्टमेंट के ACC No. 336 में इसका ज़िक्र मिलता है-

अधीन होकर बुरा है जीना, मरना अच्छा स्वतंत्र होकर।

सुधा को तजकर जहर का प्याला, पीना अच्छा स्वतंत्र होकर।।[xiv]

यहाँ हम देखते है कि कैसे लोगों को मरना पसंद है लेकिन गुलामी या दासता स्वीकार नहीं है।

आज़ादी के समय लोगों की जुबां पर रहने वाला, यहाँ तक की आज भी भारत में गुनगुनाये जाने वाला लोकप्रिय गीत को भी उस दौर में प्रतिबंध का सामना करना पड़ा। ज्ञातव्य हो कि इसका उल्लेख भी इम्पीरियल रिकॉर्ड डिपार्टमेंट के ACC No. 336 में मिलता है -

विजयी विश्व तिरंगा प्यारा, झंडा ऊँचा रहे हमारा।

सदा शक्ति बरसाने वाला, प्रेम सुधा सरसानेवाला

वीरों को हरषानेवाला, मातृ - भूमि का तन मन सारा।

विजयी विश्व ....[xv]

हमारे लोक में यह भी प्रचलित है कि जब भी वह निराश होता है और सामने उम्मीद की कोई किरण दिखाई नहीं पड़ती तब लोक ईश्वर के शरण में जाता है और उनसे अपने दुखों के निवारण के लिए मनुहार करता है। इसे समझने के लिए 30 मार्च 1931 को ज़ब्त और इम्पीरियल रिकॉर्ड डिपार्टमेंट के अभिलेखों को देख सकते हैं -

ठइयाँ भुइयां देवी देवता सब के मनाई ।

पइयाँ परी रउरे गनेश जी गोसाईं ॥

देश की विदेशिया के पंजा से छोड़ाई।

देई आशीर्वाद हमनीं चरखा चलाइ ॥ किड़० ॥[xvi]

यहाँ ईश्वर से यह प्रार्थना की जा रही है कि वह आकर हमारे देश के सभी समस्याओं से मुक्त करे एवं हम सभी को स्वावलंबी बनाये। जिससे भारत की सभी ज़रूरतें भारत द्वारा ही निर्मित वस्तुओं से पूरी की जा सके। इन पंक्तियों में चरखा चलने के लिए आशीर्वाद देने की बात रखी गई है जिसे उस समय गांधी जी के उस आह्वान से जोड़कर देखा जा सकता है जिसमें गांधी जी मशीनीकरण का विरोध करते हुए हथकरघा को अपनाने की बात कहते हैं। ताकि ज़्यादा - से - ज़्यादा हाथों को काम मिल सके। भारत के लोग अपनी मुफ़लिसी से भी परेशान थे और चाहते थे कि कैसे इसे दूर किया जाए। इसके लिए कपड़ा बुनना, कच्चे माल के पलायन को रोकना, पूँजी के पलायन को रोकना आदि उपबन्ध करने के लिए सबसे विनती करते। साथ ही साथ दमनकारी सत्ता की भी पुरजोर मुखालफ़त करते थे, जिसका उल्लेख इम्पीरियल रिकॉर्ड डिपार्टमेंट के अभिलेखों में दर्ज है –

नहि रखनी नहिं रखनी सरकार। जालिम नहि रखनी ॥
आये थे व्यापार करन को। बन गए दावेदार। जालिम
भूखों मरें किसान देश के। मजा करे सरकार ॥ जालिम
मुसलमानोंका मक्का छीना। सिक्खोंका दरबार ॥ जालिम
लाला लाजपत कतल कराया, जवाहरको डंडों पिटवाया।
भगतदत्त को कैद कराया। दिया दासको मार ॥ जालिम
पुलिस और फौज यूं बोली। अब हम चलाये किस पर गोली।
ये सब हैं अपने हमजोली। तू हैगी हुशियार ॥ जालिम
पेशावर से शहर में जाकर। परजा को निहत्थी पाकर।
मशीनगन को बाढ लगाकर। दिया सैकड़ों मार ॥ जालिम
अब स्त्रियों का नंबर आया। कई जगह डंडों पिटवाया।

कमलावती को जेल में पाया। सरोजनी पर किया भूखका वार।

नहि रखनी नहि रखनी सरकार। जालिम नहि रखनी ॥[xvii]

×××---------------------×××

सेवक बन-बन भारत माता, तेरी लाज बचावैंगे।

सकल वस्तु देशी फौरन, सब जगह बनावैंगे ॥ १॥

बैर फूट को बन्द करा कर, लूट मिटावेंगे ॥ २॥

बना-बना कर सूत, फूट सब मार भगावैंगे ॥ ३॥

आज़ादी के झण्डे को सब ही फहरावैंगे ॥ ४ ॥ सेवक० ॥

अर्बन द्रव्य साल जाता है, उसे बजावैंगे ॥ ५ ॥ सेवक ० ॥

"शंकर" सोये भाई को हम, जल्द जगावैंगे ॥ ६॥

सेवक बन-बन भारत माता, तेरी लाज बचावैंगे।[xviii]

×××---------------------×××

भारत क लाज बचाव, विदेशिया के दूर भगाव।

चरखा चलाव तकली मंगाव,

करघा से कपड़ा बिनाव, विदेशिया के दूर भगाव ॥ १॥

कुरता गजी की गंजी सिआब,

खादी से प्रेम बढ़ाव, विदेशिया के दूर भगाव ॥ २॥

जूता व छाता छड़ी भी हो देशी,

देशी घड़ी बनवाव, विदेशिया के दूर भगाव ॥ ३॥

सारी विदेशी क होली जलाव,

खद्दर क चोली सिआव, विदेशिया के दूर भगाव ॥ ४ ॥

हाली से फैशन क फांसी छोड़ाव,

नशा कोई मति खाव, बिदेशिया के दूर भगाव ॥ ५ ॥

हिम्मत न छोड़ तू झन्डा उठाव,

पुरूषन क नांव बचाव, विदेशिया के दूर भगाव ॥ ६ ॥

नौकरशाही से मति घबड़ाव,

शान्ति से बल अजमाव, बिदेशिया के दूर भगाव ॥ ७॥

"शंकर" अर्बन रपिया बचाव,

जल्दी स्वराज तूं पाव विदेशिया के दूर भगाव॥८॥[xix]

यहाँ यह स्पष्ट है कि उस समय पूरे देश में एक साथ एक जैसे लोकवृत्त का अभियान चारों ओर व्याप्त था। लोग तरह – तरह की प्रतिज्ञाएँ करते और उसे पूरा करने के लिए जेल जाने से भी पीछे नहीं हटते थे। ऐसी ही एक प्रतिज्ञा की बानगी देखिये जिसके रचनाकार का ज़िक्र कहीं नहीं मिलता –

ऐ! हिन्द तेरे नाम का डंका बजाऊंगा।

दुनियां में तेरी इज्जतो शोहरत बढ़ाऊँगा ॥१॥

जिन जालिमों ने तुझको है मुझसे जुदा किया ।

तेरी कसम मैं खाक में उनको मिलाऊँगा ॥२॥

जो ले गये हैं लूट के सब तेरा मालो ज़र।

उनको मजा मैं उनके किये का चखाऊँगा ॥३॥

चोरों से छीन दौलतों हशमत सभी तेरी ।

दुलहिन सा एक बार मैं तुझको सजाऊँगा॥४॥

दुश्मन के दस्ते जुल्म से करके तुझे रिहा।
फिर हिन्दियों की मैं तुझे माता बनाऊँगा।।५।।
हस्ती तुझे बख्सी थी पुरुषाओं ने मेरे।
मैं जान देकर भी तुझे अपना बनाऊँगा।।६।।
दस्ते उदू में छोडूंगा तुझको न ज़ीनहार।
जैसे बनेगा उससे मैं तुझको छुड़ाऊँगा।।७।।
भारत! हा कसम है तेरी ख़ाक पाक की।
जबतक जिउँगा तुझको न दिल से भूलाऊँगा।।८।।
तेरी नजात का मुझे हर दम रहेगा ख़्याल।
पाये बगैर तुझको न मैं चैन पाऊँगा।।९।।
तुझ बिन हराम होगा मुझे ऐशे ज़िंदगी।
तेरी कसम न सेजों पर आराम पाऊँगा।।१०।।
सोऊंगा बांस फूल पर तेरे फ़िराक में।
पत्तों में जहर मार करूंगा जो कहूँगा।।११।।
दुनिया का राजपाट भी मुझको अगर मिले।
तेरे बिना न कुछ इसे ख़ातिर मैं लाऊँगा।।१२।।[xx]

दुनिया का हर सुख न्योछावर करने का जज्बा जब दिलों में हो और उसके लिए बरतानी सरकार के खिलाफ़ अगर इस तरह की लेखन देखने को मिलती है तो अवश्य ही यह लोकवृत्त के बारे में वह दस्तावेज है, जिसे लक्ष्य के रूप में संजोया गया था।

चाहे औपनिवेशिक भारत की बात करें या आधुनिक भारत की नशे की समस्या एक बहुत बड़ी समस्या के रूप में हमारे सामने आती है। इसका सर्वाधिक दंश महिलाओं को झेलना

पड़ा है। चाहे वह घरेलू हिंसा के रूप में हो या फिर नशे के करण पति/पुत्र/भाई/पिता की असमय मृत्यु का दंश हो। प्रेम केवल एकांत का उत्सव मात्र नहीं है, प्रेम में लोकजागरण का भी तत्त्व मौजूद होता है। यही तो कारण है कि उस समय भी पत्नियाँ अपने पतियों से अक्सर कहती थीं-

अजी पिया विनती करूं हर बार।
शराबां पीना छोड़ दो ।।
दुनिया तो मरती कटती देश पर।
तुम्हें सूझा शराब से प्यार।।[xxi]

भारत का लोकवृत्त न केवल औपनिवेशिक भारत का विरोध करता था बल्कि हम यह देखे हि भारत के लोकतंत्र की यह भी खूबसूरती कही जाएगी कि जब तत्कालीन सरकारें जब किसानों के उम्मीदों पर खरा नहीं उतरी तब भी उन्होंने अपनी आवाज को बाल दिया और सरकार से सवाल किया। दुनिया के लोकतंत्र के इतिहास में शायद ही कहीं ऐसा देखने को मिलेगा कि लोकतंत्र की स्थापना के तुरंत बाद यहाँ तक कि पहले आम चुनाव से पहले ही लोकतंत्र में सवाल पूछा जाने लगा। भारत में संविधान लागू होने से पहले ही और प्रथम आम चुनाव से पहले ही तत्कालीन सरकार से किसानों ने सवाल पूछना शुरू कर दिया। राष्ट्रीय अभिलेखागार की अभिलेखों को हम देखते हैं तो हम यह पाते हैं कि 14 जनवरी, 1950 को किसानों ने तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. नेहरू को सवालों के घेरे में खड़ा करके 'धनिन कै राज' नाम से कविता के माध्यम से कहते है –

किसनवाँ आइल मुसीबत हमनी पर बरियार बा,
कोई न काटन हार बा ना।
रहल भरोसा नेहरू जी पर करिहें बेड़ापार जी,
नाव चढ़ाकर हम लोगन के छोड़ दिहलन मझधार जी ।

बीच भँवर में नैया डूबत कोई न खेवनहार जी,
चहुँ तरफ मैं देख रहा हूँ सूझत नाही किनार जी ॥
करी हम केकरा से पुकार, नैया खेके लगावत न पार ।
इस विपत्ति में कोई न सुननहार बा ।। कोई० ।।[xxii]

उसी अंक में प्रकाशित एक और 'नैना मझधार' नामक लोकगीत हमारे सामने देखने को मिलता है, उसमें पं. नेहरू पर वादाखिलाफ़ी का आरोप लगाते हुए किसान आपस में संवाद करते है और कहते हैं –

किसनवाँ भइया सुन कइसन आफत आईल बाय
मन देख देख घबरहाल बा ना।
पंडित नेहरू जी कहे थे हूँगा जब आजाद जी,
पूंजी पति जमीदारों को कर दूँगा बरबाद जी।।
किसान - मजदूर सब शामिल भइन, सुनकर यह फरियाद जी
भारत के नर नारी बतिया यह यादजी।।
लेकिन भूले जवाहरलाल, हटवलन गरीबन पर से ख्याल।
देख पूजीपति पर से कइसन गांठ बंधाइलबा ।।मन...।।[xxiii]

कहा जाता है कि जहाँ प्रेमी रहते है, वही प्रेम के दुश्मन भी रहते है। अभी तक हमने देखा कि किस तरह देश की आज़ादी के लिए अपना सब कुछ न्योछावर करने के लिए भी जनता आतुर दिखाई पड़ती थी। वहीं हम यह भी देखते है कि कुछ सत्ता के पैरोकारों ने चंद पुरस्कार के लिए अपने कर्तव्य से विमुख भी दिखाई पड़े।

“संयुक्त प्रांत से प्रकाशित होने वाले पत्र ‘ज्ञानशक्ति’ - गोरखपुर ने अपने 09 दिसम्बर 1921 के अंक में खिलाफत और असहयोग आन्दोलन के ख़िलाफ़ एक लेख लिखा जो बरतानी हुकूमत को इतना पसंद आया कि इसकी हजारों प्रतियाँ जनता के बीच बँटवाई गयीं। इस लेख का एक अंश देखिए-

‘अभी तुम लोग इस योग्य नहीं हो, अभी भारतवासी सत्याग्रह नहीं कर सकते। गांधी जी ने स्पष्ट कहा था कि भारतवासी अभी सत्याग्रह योग्य नहीं हैं। पर थोड़े ही दिन बाद कांग्रेस के दिल्ली वाले अधिवेशन में गांधी जी ने फिर सत्याग्रह की घोषणा कर दी। न मालूम इतने दिनों में कहाँ से योग्यता टूट पड़ी... गांधी जी मनुष्य हैं। उनसे गलती होनी सम्भव है। सम्भव ही नहीं है, बार-बार उन्होंने गलती की है और ग़लती करते आते हैं।.... इसलिए हम कहते हैं कि ठहरो’।”[xxiv]

सब के बाद भी लोक में आज़ादी के प्रति जुनून देखने को मिलता है।

यारो, वतन का तुमको जिस दिन ख्याल होगा।
तब दुश्मनों से अपना बाँका न बाल होगा ॥
पीटेंगे पेट अपना इंगलैंड के जुलाहे ।
कपड़ा बनाने में जब हासिल कमाल होगा ॥
जाना विदेश में जब अनाज का रुकेगा।
तब देखना हमारा घर माल-माल होगा ॥
जिस दिन करोगे दिल से बहिष्कार तुम विदेशी।
"दे दो स्वराज्य हमको" यह क्यों सवाल होगा ॥[xxv]

×××---------------------×××

भारत न रह सकेगा हर्गिज गुलामखाना ।

आजाद होगा होगा, आता है वह जमाना ॥
खूं खौलने लगा है हिन्दोस्तानियों का।
कर देंगे ज़ालिमों का हम बन्द जुल्म ढाना ॥
क़ौमी तिरंगे झण्डे पर जां निसार अपनी।
हिन्दु, मसीह, मुस्लिम गाते हैं यह तराना ॥
अब भेड़ और बकरी बन कर न हम रहेंगे।
इस पस्त हिम्मती का होगा कहीं ठिकाना ॥
परवाह अब किसे है जेल ओ दमन की प्यारो।
एक खेल हो रहा है फांसी पै झूल जाना ॥
भारत वतन हमारा भारत के हैं हम बच्चे।
माता के वास्ते है मंजूर सर कटाना ॥[xxvi]

भारत के बाहर भी जो भारतीय प्रवासी गिरमिटिया या अन्य किसी रूप में भेजे गये जो कभी आपने देश वापिस न आये उनकी पीड़ा भी असह्य थी। उनका लोक भी इस पीड़ा को आपने गीतों के माध्यम से अभिव्यक्त करता है –

फिरंगिया के राजुआ मा छूटा मोरा देसुआ हो,
गोरी सरकार चली चाल रे बिदेसिया
भोली हमें देख आरकारी भरमाय हो,
कलकत्ता पर जाओ पांच साल रे बिदेसिया।
डीपुआ मा लाए पकराओ कागदुआ हो,
अंगुठुआ लगाए देल हार रे बिदेसिया।
पाल के जहाजुआ मा रोय-धोय बैठी हो,

कैसे होई काला पानी पार रे बिदेसिया ।[xxvii]

प्रतिबन्ध और लोकवृत्त की यह रस्साकशी पूरे स्वाधीनता संग्राम के दौरान लोकगीतों में शिद्दत से सक्रिय रही। आज़ादी के आन्दोलन को जन – जन तक पहुँचाने में इन लोकगीतों, गीतों और लेखों ने अविस्मरणीय योगदान दिया। भारतीय चेतना के मुक्तिकामी और स्वाधीन स्वरों के निर्माण और विकास में इन सन्दर्भों की केन्द्रीय भूमिका रही है। प्रतिबंधित साहित्य अध्ययन और विश्लेषण हेतु अभी और प्रबल तथा सार्थक अभियानों की दरकार है।

---

[i] *पाण्डेय, मैनेजर, लोकगीतों और गीतों में 1857, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, पहला संस्करण, 2015, पृष्ठ संख्या 1*

[ii] *प्रेमचंद, साहित्य का उद्देश्य, अनुराग प्रकाशन, वाराणसी, 1 संस्करण, 2017, पृष्ठ संख्या 11*

[iii] रस्तोगी, क्षमाचंद्र, आज़ादी का बिगुल, सरस्वती प्रेस, वाराणसी, पृष्ठ संख्या 2

[iv] *शुक्ल, रामचंद्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पाँचवाँ संस्करण, 1949, पृष्ठ संख्या 1*

[v] बाबुराम, नमकीन जंग, {सं. रावल, अमृत लाल, आजादी के तराने, भाग 2, ढाई अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृष्ठ संख्या 17 (इम्पीरियल रिकॉर्ड डिपार्टमेंट, ACC No. 581 H, 10 दिसम्बर 1930)}

[vi] रस्तोगी, क्षमाचंद्र, आज़ादी का बिगुल, ग़ज़ल 2, सरस्वती प्रेस, वाराणसी, पृष्ठ संख्या 4

[vii] वहीं, ग़ज़ल संख्या 3, पृष्ठ संख्या 5

[viii] वहीं, ग़ज़ल संख्या 3, पृष्ठ संख्या 4

[ix] *पाण्डेय, मैनेजर, लोकगीतों और गीतों में 1857, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, पहला संस्करण, 2015, पृष्ठ संख्या 32*
[x] *पाण्डेय, मैनेजर, लोकगीतों और गीतों में 1857, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, पहला संस्करण, 2015, पृष्ठ संख्या 32*
[xi] *पाण्डेय, मैनेजर, लोकगीतों और गीतों में 1857, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, पहला संस्करण, 2015, पृष्ठ संख्या 33*
[xii] होम पॉलिटिकल फाइल 230/1932, पृ. 6 भारतीय राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली
[xiii] भारत को गारत कर दिया, मल्हार नं. 6, सं. बाबू राम शम्मी, {आज़ादी के तराने, भाग 2, सं. प्रो. अमृत लाल रावल, ढाई अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 24, (इम्पीरियल रिकॉर्ड डिपार्टमेंट, ACC No. 313 H, 30 मई 1931)}
[xiv] सं. खत्री, रणछोड़ दास, (चमकता स्वराज {प्रथम पुष्प}, वाराणसी, 1930, पृष्ठ संख्या 1)
[xv] वहीं, पृष्ठ संख्या 2
[xvi] बिरहा, सं. सियाराम शरण मिश्र, {आज़ादी के तराने, भाग 2, सं. प्रो. अमृत लाल रावल, ढाई अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 12, (इम्पीरियल रिकॉर्ड डिपार्टमेंट, 30 मार्च 1931)}
[xvii] पंजाबी, रूपचंद, चमकता स्वराज, सं. खत्री, रणछोड़ दास, वाराणसी, 1930, पृष्ठ संख्या 3-4
[xviii] कजली 9, शिवशंकर द्विवेदी, {आज़ादी के तराने, भाग 2, सं. प्रो. अमृत लाल रावल, ढाई अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 116, (इम्पीरियल रिकॉर्ड डिपार्टमेंट, ACC No. 361 H, 30 मार्च, 1931)}

[xix] गाना चलता पर गाने का, शिवशंकर द्विवेदी, {आज़ादी के तराने, भाग 2, सं. प्रो. अमृत लाल रावल, ढाई अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 116-117, (इम्पीरियल रिकॉर्ड डिपार्टमेंट, ACC No. 361 H, 30 मार्च, 1931)}

[xx] सं. खत्री, रणछोड़ दास, चमकता स्वराज, वाराणसी, 1930, पृष्ठ संख्या 5-6

[xxi] पति से प्रार्थना, मल्हार नं. 8, सं. बाबू राम शम्मी, {आज़ादी के तराने, भाग 2, सं. प्रो. अमृत लाल रावल, ढाई अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 25, (इम्पीरियल रिकॉर्ड डिपार्टमेंट, ACC No. 313 H, 30 मई 1931)}

[xxii] धनिन कै राज, सत्यनारायण सिंह बाल रूप शर्मा, {आज़ादी के तराने, भाग 2, सं. प्रो. अमृत लाल रावल, ढाई अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 38, (इम्पीरियल रिकॉर्ड डिपार्टमेंट, ACC No. 319 H, 14 जनवरी, 1950)}

[xxiii] नैया मझधार, सत्यनारायण सिंह बाल रूप शर्मा, {आज़ादी के तराने, भाग 2, सं. प्रो. अमृत लाल रावल, ढाई अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 42, (इम्पीरियल रिकॉर्ड डिपार्टमेंट, ACC No. 319 H, 14 जनवरी, 1950)}

[xxiv] सहाय, निरंजन, हम बेकसों ने देखा है राज जालिमाना, अपनी माटी, प्रतिबंधित साहित्य विशेषांक, नवम्बर 2022

[xxv] सं. रावल, अमृत लाल, आज़ादी के तराने, भाग 1, ढाई अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृष्ठ संख्या 94

[xxvi] सं. रावल, अमृत लाल, आज़ादी के तराने, भाग 1, ढाई अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृष्ठ संख्या 94

[xxvii] *पाण्डेय, मैनेजर, लोकगीतों और गीतों में 1857, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, पहला संस्करण, 2015, पृष्ठ संख्या 39*